उच्च शिक्षा में मानव मूल्यः वर्तमान सन्दर्भ

डॉ0 ऋतुध्वज सिंह*
डॉ0 अनीता शर्मा**

सारांशिका

शिक्षा से तात्पर्य मूलतः व्यक्तित्व के समग्र विकास से है। विद्वानों और मनीषियों ने शिक्षा की जो परिभाषाएँ दी हैं, उन सबका समन्वित अर्थ व्यक्तित्व का समग्र विकास है। इसकी आवश्यकता और शाश्वत उपयोगिता के सम्बन्ध में एक मनीषी का कथन है कि ''शिक्षा जीवन का शाश्वत मूल्य है। मानवीय चेतना जिन दो प्रकार के मूल्यों की परिधि में पल्लवित होती है उनमें कुछ शाश्वत होते हैं और कुछ परिवर्तनशील। शिक्षा को जीवन का शाश्वत मूल्य कहा जा सकता है क्योंकि शिक्षा का अर्थ केवल वस्तुओं या विभिन्न विषयों का ज्ञान मात्र नही है अपितु शिक्षा वह माध्यम है जिसके द्वारा एक समाज अपनी धारणाएँ, मान्यताएँ, आदर्श एवं उच्चतर आकांक्षाएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करता है जिन्हे शाश्वत् मानव मूल्य कहते हैं। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में यदि किसी तत्व की सर्वाधिक कमी है तो वो इन्हीं मूल्यों की है। आज के युग में शिक्षा जानकारियों का विस्फोट मात्र बन कर रह गयी है जिसके कारण अपने देश में ही राष्ट्रीय नैतिक चरित्र का अभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहा है।

प्रस्तुत शोध पत्र में उच्च शिक्षा में अवमूल्यन एवं उसके कारणों पर विस्तार से चर्चा की गयी है साथ ही यह भी बताने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार शिक्षा के साथ–साथ विद्या का समन्वय करके पुनः उस अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है जिसने भारत को विश्वगुरू के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया था।

कूट शब्द : उच्च शिक्षा, मूल्य, विद्या।

प्रस्तावना

किसी भी समाज की धारणाएँ, मान्यताएँ, आदर्श एवं उच्चतर आकाक्षांएँ ही वहाँ के जीवन मूल्य होते हैं और ये देश, काल और परिस्थिति सापेक्ष होते हैं। यद्यपि इन जीवन मूल्यों के आधार भूमि में परिवर्तन नहीं होता परन्तु उनके व्यवहरित रूप में परिस्थिति जन्य परिवर्तन होते रहते हैं। शिक्षा इन मूल्यों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करने का माध्यम है। शिक्षा जीवन निर्माण की कला है। इसका वास्तविक स्वरूप यही है। यद्यपि इस स्वरूप में भौतिकी, रसायन, चिकित्सा, वास्तुकला आदि की विविध जानकारियाँ भी समाविष्ट हैं, पर इनका उद्देश्य जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं का समाधान कर जीवन का निर्माण करना है। जीवन–निर्माण की यह विद्या सीखने वाला छात्र है और सिखाने वाला अध्यापक। आदर्श अध्यापक और अनुशासित छात्र का युग्म ही इसको सार्थक–समुन्नत बनाता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली का स्वरूप पूरी तरह बदल गया है जिसके परिणाम स्वरूप विभिन्न प्रकार की असामाजिक एवं अमानवीय घटनाऐं शिक्षा संस्थाओं में आये दिन सुनने को मिलती हैं इसका कारण है शिक्षा में नैतिक शिक्षण और चरित्र निर्माण जैसे अनिवार्य तत्वों का नितान्त अभाव। आज शिक्षा का उद्देश्य कोरी बौद्धिक उन्नति मात्र ही रह गया है। इस क्षेत्र में हमने कीर्तिमान तो बहुत स्थापित किए परन्तु मानवीय मूल्यों का ह्रास सबसे ज़्यादा हुआ। एकांगी प्रगति ने समाज में अस्थिरता और अराजकता का वातावरण निर्मित किया विश्वद्यिालय बढ़े, महाविद्यालय बढ़े, परिवर्तन कुछ नही हुआ इन शिक्षा केन्द्रों से डिग्रीधारियों की सेना प्रति वर्ष निकलने लगी। 'पढ़ाई करो डिग्री पाओं और डिग्री पाकर नौकारी पाओ' यही है आज की शिक्षा का उद्देश्य।

शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए स्वावलम्बी, ज्ञानवान, चरित्रवान, व्यक्तित्व का धनी देश समाज के लिए उपयोगी नागरिक बनाना, परन्तु वर्तमान टकसाली शिक्षा प्रणाली में इस उद्देश्य का सर्वथा अभाव ही है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत जीवन विद्या का समुचित ज्ञान तथा व्यवहार का समावेश लगभग नहीं के बराबर है।

इतना ही नहीं अध्यापकों की व्यवसायिक मनःस्थिति, छात्रों का अंसतोष, राजनीतिक

*सहायक आचार्य, भाषा विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय गायत्रीकुँज शान्तिकुँज हरिद्वार।
**सहायक आचार्य, मनोविज्ञान विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला।

हस्तक्षेप आदि ऐसे अनेक कारण हैं जिनके परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय शिक्षा के पावन मंदिर न रहकर असामाजिकता के अखाड़े बन गए हैं। जो छात्र कभी शिक्षकों के चरण स्पर्श करने में अपना गौरव समझते थे, आज वही शिक्षकों का गला पकड़ने में बहादुरी मानते हैं। नैतिकता एवम् अनुशासन जैसी चीजें तो मात्र पुस्तकों के पन्नों में छिपकर रह गयीं हैं। विद्या मंदिरों की पवित्रता, श्रेष्ठता नष्ट करने में किसकी गलती अधिक है, यह कहना तो कठिन है, पर यह सुनिश्चित है कि इस भयावह स्थिति के लिए छात्र एवं शिक्षक दोनों अपनी-अपनी जगह उतनें ही कसूरवार हैं। आज भी कहीं-कहीं ऐसे उदाहरण मिल जाते है, जो प्राचीन गौरव की झलक दिखा देते हैं, पर ऐसे छात्र और अध्यापक नगण्य ही हैं।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार ''मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली प्रक्रिया का नाम ही शिक्षा है''। यदि इस कथन के मापदण्डानुसार वर्तमान शिक्षा पद्धति की कसौटी पर कसा जाए तो स्वाभविक ही प्रश्न उठेगा कि - क्या यह वास्तव में शिक्षा है ?और यदि नहीं तो क्यों ?

भारतीय संस्कृति सदैव ही वस्तुओं एवं तथ्यों को सूक्ष्म जीवन दृष्टि से देखने की पक्षपाती रही है अतः यहां शिक्षा को विस्तृत अर्थ में देखा जाता रहा है। इस अर्थ में व्यक्ति अपने जीवन काल में जन्म से लेकर मृत्यु तक जो कुछ भी सीखता है, अनुभव करता है, शिक्षा के अन्तर्गत करता है। वह सीखने एवं अनुभव करने के कारण ही अपने सामाजिक, आध्यामिक एवं भौतिक वातावरण से सामंजस्य स्थापित कर पाता है।

प्राचीनकाल की भारतीय परंपरा में तपस्वी, आदर्शनिष्ठ, अपरिग्रही, ऋषि स्तर के अध्यापक होते थे। वैसे ही अनुशासित, सेवाभावी, अध्यवसाय वाले, स्वाध्यायशील छात्र। शिक्षा भी ऐसे युग्म को पाकर अपने को कृतार्थ समझती थी और अपने सारे-के-सारे रहस्य ऐसे सुपात्रों के समक्ष खोलने में अपने को कृतकृत्य मानती थी। तपस्वी शिक्षकों में जहाँ शिक्षण-प्रक्रिया का चरम विकास हुआ था, वहीं छात्रों में अध्ययन-प्रक्रिया अपनी चरम सीमा पर थी। विभिन्न विद्याओं, कलाओं में निष्णात छात्र भी अकड़बाजी व गर्व की मदिरा में चूर न होकर विनय के अमृत से सराबोर होते थे। 'विद्या ददाति विनयम्' का सूत्र सदैव सर्वत्र परिलक्षित होता था। हड़ताल और मार-धाड़ ने तो संभवतः विद्यालयों के शब्दकोश में भी प्रवेश न पाया होगा।

ऐसी परंपरा का निर्वाह भारद्वाज जैसे ऋषि करते थे। उनका गुरूकुल प्रयाग के पावन क्षेत्र में था, जहाँ दस हजार स्वाध्यायशील छात्र विद्या अध्ययन करते थे। उस समय शिक्षा का विकास विद्या स्तर तक हुआ था। ज्ञातव्य है कि शिक्षा के विकास का ही सुपरिष्कृत रूप विद्या है। विद्या का लक्ष्य सत्य का अध्ययन करना है, पर आज तो स्थिति दूसरी है। विनोबा ने एक जगह इस संबंध में उल्लेख करते हुए कहा था, "ऋषिकाल में विद्यालय विद्या के आलय अर्थात आगार होते थे, पर आज के परिवेश में विद्यालय ऐसे हैं, जहाँ विद्या का लय अर्थात लोप होता है। "विनोबा का यह कथन निश्चित ही आज के वातावरण को देखकर यथार्थ प्रतीत होता है।

शिक्षक की भूमिका इतनी ही नहीं है कि मात्र विषय की जानकारी दे दें, वरन् उनका दायित्व यह भी बनता है कि वह विषय को भली प्रकार हृदयंगम भी करा दें। उनके दायित्व में अभिभावक का दायित्व भी सम्मिलित है। यद्यपि अब आवासीय विद्यालय कम हैं, जबकि पहले इसी स्तर के विद्यालय होते थे। वाल्मीकि रामायण में एक प्रसंग आता है, जब महर्षि विश्वमित्र अपनी शिक्षण-प्रकिया के समय राम और लक्ष्मण को प्रोत्साहन देते हुए प्रातःकाल जगाते हुए कहते थे, "उत्तिष्ठ नरशार्दूल पर्वा संध्या प्रवर्तते।" विश्वामित्र जैसे आचारवान और तपस्वी गुरू और राम-लक्ष्मण जैसे विनयी अध्यवसाय संपन्न सुपात्रों को पाकर ही बला और अतिबला विद्याएँ सार्थक हुई।

सेवानिवृत्त वरिष्ठ आई०सी०एस० अधिकारी श्री जगदीश चंद्र माथुर ने अपनी पुस्तक 'दस सुमन' में अपने वार्डन विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति प्रो० अमरनाथ झा के व्यक्तित्व तथा आदर्शनिष्ठा पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि वे छात्रों के साथ पुत्रवत व्यवहार करते थे। आने वाले छात्रों से पहली मुलाकात वे अपने घर बुलाकर ही करते थे। इस पहली मुलाकात के बाद छात्र इतने अभिभूत हो जाते थे कि किसी समस्या, कोई उलझन को उनके सामने रखने में संकोच नहीं करते थे। प्रत्येक छात्र उनमें अपने

अनुशासनप्रिय, आदर्शनिष्ठ, कर्तव्यपरायण शिक्षक की जाग्रत मूर्ति देखने के साथ ही भावनाशील पिता की प्रतिच्छाया भी देखता था। सचमुच ऐसे ही शिक्षक विद्यार्थियों का निर्माण करने में सक्षम हैं।

डॉ प्रेंफुल्लचंद्र राय विश्वप्रसिद्ध रसायनविद् होने के साथ ऐसे ही उत्कृष्ट कोटि के शिक्षक भी थे। उनसे पढ़ने में छात्र अपने सौभाग्य को सराहते थे। वे भी ७५० रूपये के वेतन में से अपने लिए मात्र ५० रूपये रखकर बाकी सभी छात्रों के हित के लिए लगाते थे। उनका स्नेह पाकर छात्रों का हृदय गद्गद हो जाता था। जिसने एक बार उनका सान्निध्य पाया, बार-बार उनसे मिलने को आतुर रहता था। उद्दंड-से-उद्दंड छात्र उनके प्रेम की मोहिनी से मोहित होकर सारा कलुष त्यागने व अनुशासन बद्ध होने को तैयार हो जाते थे। डॉ शांतिस्वरूप भटनागर जो सी एस आई आर के प्रथम निदेशक बने, उन्हीं की देन थे।

श्री अरविंद घोष जो क्रांतिकारी होने के पूर्व बड़ौदा कॉलेज में अँगरेजी और लैटिन के अध्यापक थे, अपनी शिक्षण-कला, निस्पृहता, उदारता, स्नेह आदि गुणों से थोड़े ही समय में छात्रों के मानस-मंदिर में पूरी तरह से प्रतिष्ठित हो गए थे। उत्तर प्रदेश के पूर्व राज्यपाल, भारतीय विद्या भवन के संस्थापक श्री के एम मुंशी, जो उस समय उनके छात्र थे, ने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि उनके घर जाने पर उनकी सादगी देखकर मैं दंग रह गया। श्री अरविंद मात्र चटाई पर सोते थे। घर में तड़क भड़क जैसी कोई चीज नहीं थी। संपत्ति-सजावट के नाम पर मात्र पुस्तकें। ऐसी अभूतपूर्वता देखकर जिज्ञासा करने पर श्री अरविंद ने बताया कि शिक्षक को कठोर संयमी होना चाहिए। जब वह स्वयं अध्ययनशील, त्यागी, निस्पृह, अपरिग्रही बनेगा, तभी अपने छात्र को योग्य और अनुशासनप्रिय होने के साथ देशभक्त बना सकेगा।

ऐसी ही कड़ी में थे डॉ० राधाकृष्णन, जिन्होंने शिक्षक को गरिमा और सादगी का परिचय बनाया। राष्ट्रपति होने के बाद भी वे अपने को शिक्षक ही समझते रहे और २५०० रूपये प्राध्यापक का वेतन लेकर शेष ७५०० रूपयों को राष्ट्रीय सुरक्षा कोश में देते रहे। इसी त्यागवृत्ति व आदर्श शिक्षक होने के कारण उनका जन्म-दिवस ५ सितंबर 'शिक्षक दिवस' के साथ अपरिग्रह, आदर्शवादिता के गुणों को अपनाने एवं विकसित करने की याद दिलाता है।

उद्देश्यः

आज का शिक्षा समाज एक अनिश्चित बेचैनी के दौर से गुजर रहा हैं। चाहे किसी से भी बात करें वह देश की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के प्रति घोर असंतोष व्यक्त करता है। वर्तमान में अधिकतर विद्यार्थी स्वयं को परिस्थितयों के अनुकूल ढालने में सर्वदा असमर्थ पातें है क्योंकि वह न स्वयं से संतुष्ट है न ही अपनी शिक्षण व्यवस्था से साथ ही उसे जीवन के लक्ष्य की भी कोई जानकारी नहीं जिससे वह तृप्ति का अनुभव करें। जीवनदर्शन का सर्वथा उसमें अभाव दिखता है। विद्यार्थी हर परिस्थिति में असंतोष का अनुभव करता है, इसी द्वंद के कारण टूटन के कगार पर खड़ा है। वह स्वयं को परिस्थितियों का मारा अनुभव करता है। ऐसी स्थिति में समय-समय पर उसमें क्रोध का विस्फोट स्वभाविक है विद्यार्थियों के साथ शिक्षकगण भी इसके अपवाद नहीं कहे जा सकते। ऐसे लोगों की समाज में कमी नहीं है, जो इस अवांछनीय समस्या की तह में जाने की कोशिश न करते हों। परंतु वह इस समस्या को देश की सामाजिक – आर्थिक – राजनीतिक समस्याओं से जोड़ते हैं कुछ तो प्रचलित आधुनिक शिक्षा पद्धति पर सारा दोष थोप देते है तथा शिक्षा में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता प्रतिपादित करते है, परंतु कोई ठोस सुझाव नहीं देते यह तो सर्वविदित तथ्य है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था में आज तक अनगिनत प्रयोग किए जा चुके हैं। जो उपचार सुझाए गए हैं वह व्याधि से कहीं अधिक खतरनाक तथा नुकसानदायक सिद्ध हुए और अब समय आ गया है कि शिक्षाविद् एक जगह एकत्रित हों और समस्या का निदान खोजें तथा उसके बाद प्रभावी उपचार का सुझाव दें।

प्रस्तुत शोध पत्र का एक मात्र उद्देश्य उच्च शिक्षा के क्षेत्र में व्युत्पन्न मूल्य ह्रास की समस्या की ओर न केवल ध्यानाकर्षण अपितु शिक्षा में विद्या के समावेश के माध्यम से इस समस्या का समुचित एवं स्थाई समाधान प्रस्तुत करना है जिससे उच्च शिक्षा में गुणवत्ता का सृजन कर समाज को एक स्वस्थ्य विचारों वाला सुसंस्कारित मनुष्य,सच्चा मनुष्य एवं सर्वांगपूर्ण मनुष्य प्रदान करने की संकल्पना को साकार किया जा सके एवं जिससे एक सभ्य, सुखी एवं प्रगतिशील

समाज के निर्माण की संकल्पना साकार हो सके।

विश्लेषण एवं निष्कर्ष :

शिक्षा एंव विद्या का स्वरूप

शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की अन्तर्निहित क्षमताओ को पूर्ण विकसित करना है।

''शिक्ष्यते विद्योपादीयतेऽनयेति शिक्षा'

अर्थात् प्राणी जिस साधन प्रणाली से ज्ञान उपार्जित करता है, उसी का नाम शिक्षा है।

स्वामी शिवानंद सरस्वती के अनुसार–

शिक्षा की सार्थकता उसके उद्देश्य में सन्निहित है शिक्षा का उद्देश्य ही है – मनुष्य को भगवान और व्यक्ति से प्रेम करना सिखाना ।

सच्ची शिक्षा वही है जो विद्यार्थियो को सत्यवक्ता, सच्चरित्र, निर्भय विनम्र और दयावान बनाती है और उन्हे सदाचरण, सादा जीवन, उच्च विचार, आत्मबलिदान तथा ब्रह्म–विद्या के पाठ पढ़ाती है।

विद्या का अर्थ

विद्या शब्द ज्ञान का पर्याय है। जो ज्ञान मनुष्य को लौकिक बंधनो से मुक्त करे और उससे जीवात्मा की वस्तुस्थिति की बूझ कराए वस्तुतः वही विद्या सार्थक है। विद्या आत्मा की प्यास है उसकी पूर्णाहुति आत्मज्ञान से होती है। अतः अपने जीवन लक्ष्य की पूर्ति के लिए विद्या की महत्पूर्ण आवश्यकता है।

नीतिशास्त्र ने विद्या के प्रतिकूल एवं स्वरूप के संबध में एक सूत्र बताया है।

विद्या ददाति विनयं विनयं ददाति पात्रतं
पात्रत्वां धनमाप्नोति, धनात धर्मततो सुखम्

विद्या विनयशीलता प्रदान करती है। विनय से पात्रता निखरती है। पात्रता से धन मिलता है। धन के द्वारा धर्म, पुण्य हो सकते हैं और इन सब प्रयोजनो के हस्तगत होने में सुख ही सुख है।

अध्यात्म रामायण के अनुसार –

देहोऽहमिति या बुद्धिरविद्या सा प्रकीर्तिता
नाहं देहेश्चिदात्मेति बुद्धिर्विद्याति मन्यते ।।

मैं देह हूँ' इस बुद्धि का नाम अविद्या है। मैं देह नही चेतन आत्मा हूँ, इसका ज्ञान प्राप्त करना ही सच्ची विद्या है। विद्या का वास्तविक स्वरूप वह है जो मनुष्य को सही दिशा, सही मार्ग और सच्चा प्रकाश दिखाती है, और जीवन में पूर्णता लाती है। इस मूल्य परक शिक्षा को ही अध्यात्म कहते हैं जो व्यक्ति को जागृति और ज्ञानवान बनाता है।

उपनिषदों में विद्या

'' ज्ञान तृतीयं मनुष्य नेत्रं समस्त तत्वार्थ विलोक दक्षम्

अर्थात दो नेत्रों से देखने के बाद भी जो अपूर्ण रह जाता हैं वह विद्यारूपी तृतीय नेत्र से देखा जाता है। ''साविद्या या विमुक्तये '' विद्या वह है जो मुक्ति प्रदान करे जिससे हर प्रकार के रोग, शोक, द्वेष,पाप हीनता दासता ,गरीबी, बेकारी, अभाव, अज्ञान ,कुसंस्कार आदि की दासता से जीवात्मा को मुक्त करे।

शिक्षा के साथ विद्या न होने से जन्मी समस्याएँ

श्री राम शर्मा आचार्य के अनुसार – ''शिक्षा की महत्ता जितनी बताई जाए उतनी ही कम है पर विद्या को ज्ञानचक्षु की उपमा दी गई है। विद्या के अभाव में मनुष्य अंधों के समतुल्य माना जाता है विद्या सर्वोपरि धन है विद्या मनुष्य के गुण, कर्म स्वभाव और व्यक्तित्व का विकास करती है, प्रतिभा को समुन्नत एंव सुसंस्कृत बनाती है कोरी शिक्षा तो भ्रष्ट चिंतन और दुष्ट आचरण द्वारा मनुष्य को और अधिक खतरनाक बना देती है। ऐसे में ब्रह्मराक्षस ज्यादा जन्म लेते है। आज की शिक्षा में व्यक्तित्व निखारने वाले–व्यावहारिक सभ्यता के साँचे में ढालने वाले एवं प्रतिभा को प्रखर बनाने वाले लक्ष्यों का समावेश नहीं है मात्र बहुज्ञ होने के नाम पर उद्धत अहंमन्यता से संबंधित दुर्गुण सँजो लेने पर कोई अशिक्षित से भी गया–गुजरा सिद्ध हो सकता है। ऐसे स्वभाव वाले हर किसी का अहित ही करेंगे। अपने देश में ऐसी शिक्षा की कमी है, जिसमें विद्या का समुचित समावेश हो।''

वर्तमान में शिक्षण संस्थानों की भरमार तो सर्वत्र है परन्तु दक्षता एवं विशेषज्ञता की कमी के कारण 25 प्रतिशत स्नातक ही अच्छा कैरियर प्राप्त कर पाते है। हमारे देश में उच्च शिक्षा एवं तकनीकी शिक्षा का विस्तार तो बहुत हुआ परन्तु गुणवत्तापूर्ण शिक्षण प्रक्रिया का समावेश न होने से बेरोजगारी की समस्या ने जन्म लिया। तकनीकी शिक्षा के संबंध में एमबीए यूनिवर्स डाट काम के मैरी ट्रैक इम्प्लायबिलिटी स्टडी के सर्वे में कहा गया है कि एमबीए की पढ़ाई कर रहे स्नातकों को में महज 21

प्रतिशत छात्र ही नौकरी पाने के काबिल हैं। इस सर्वे में 29 प्रमुख शहरों के 2263 एमबीए स्नातक एवं 100 बिजनेस स्कूल शामिल थे। इसी तरह मेट्रोमैन ई श्रीधरन के अध्ययन के मुताबिक महज 12 प्रतिशत इन्जनीयरिंग के छात्र ही नौकरी के लायक हैं। इसका कारण डिग्री के साथ प्रोफेशनल स्किल एवं सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास का शिक्षा में समावेश का न होना है। उच्च शिक्षा के साथ जीवन विद्या के मूल्यों का समावेश शिक्षण प्रक्रिया में सम्मिलित होना आवश्यक है और शिक्षा में विषय के अतिरिक्त ज्ञान का समावेश होना भी आवश्यक है।

देश में प्राचीनतम व आधुनिक गुरुकुल शिक्षा–

उन्नीसवी शताब्दी में जब मैंकाले के विवरण पत्र के अनुसार ब्रिटिश शासन ने भारत में अपना प्रशासन सबल बनाने हेतु अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार किया तभी कुछ हिन्दु सुधारको ने प्राचीन गुरुकुल प्रणाली को पुनर्जीवित करने का प्रयोग किया जिनसे महर्षि दयानंद सरस्वती प्रमुख थे उन्होने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की ओर देश का ध्यान आकर्षित किया तथा वेदों की ओर लौटो का नारा लगाया। शिक्षा से तात्पर्य मूलतः व्यक्तित्व के समग्र विकास से है। ज्ञान प्राप्ति के हमारे दो स्रोत हैं।

1. अनौपचारिक शिक्षा
2. औपचारिक शिक्षा

अनौपचारिक शिक्षा हमें घर, समाज, वातावरण और संतो– महापुरुषों से मिलती है। जो सामाजिक प्रगति का आधार होती है। अनौपचारिक शिक्षा हमारे ज्ञान का विकास का 90 प्रतिशत भाग होती है।

औपाचारिक शिक्षा शिक्षण संस्थानों से मिलती है जो व्यक्ति को एकांगी बनाती है अतः शिक्षण प्रक्रिया में उन सभी मूल्यों का समावेश आवश्यक है जो व्यक्ति को केवल रोजगारोन्मुखी ही न बनाये बल्कि सर्वतोन्मुखी बनाये। इसके लिए आवश्यक है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में वैदिक विद्या प्रणाली एवं गुरुकुल सिद्धान्तों का समावेश हो। मूल्यपरक शिक्षा के संबंध में वैदिक वांङ्मय में उद्धृत है कि –'गुरु भी अग्नि की साक्षी में प्रतिज्ञा करता है कि यदि मैं तेरे लिये ठीक एवं नियमपूर्वक रहने तथा यथावत विद्योपदेश न करूं तो मैं पाप का भागी होऊगां, तथा मेरी विद्या निष्फल हो जायेगी। प्राचीन काल में गुरु शिष्य एक दूसरे के प्रति स्वकर्त्तव्य पालन करने में कितने दृढ़ भाव से रहते थे यह आज के छात्र और अध्यापकों को सीखना चाहिए । प्राचीन गुरुकुल शिक्षण परम्परा में उपनयन संस्कार के द्वारा विद्यारंभ किया जाता था जिसका अर्थ होता है शिष्य का गुरु के समीप आना, जिसमें गुरु अपनी सम्पूर्ण विद्या एवं ज्ञान के माध्यम से शिष्य को समग्र ज्ञाता एवं देश की रक्षा हेतु पारगंत करता था। व्यावहारिक दृष्टि से मनुष्य की इच्छाओं की संतुष्टि को मूल्य की संज्ञा दी जाती है। मानव जीवन पशु एवं वनस्पति जगत से भिन्न है। इस भिन्न्ता के आधार पर मानव जीवन के मूल्य हैं। मूल्य मानव जीवन की सार्थकता है, उसका धर्म हैं, उसका अस्तित्व है। अतः मूल्यों का ज्ञान हमारे लिए आवश्यक है। मूल्यों की अनभिज्ञता उदात्त मूल्यों की ओर अग्रसर होने में हमारे समक्ष प्रमुख बाधा हैं। हाँ यह अवश्य है कि केवल मूल्य की अनभिज्ञता ही मूल्यपरक जीवन का लक्षण नहीं है। दुर्योधन का यह कथन –

जानाभि धर्म न च में प्रवृत्तिः जानाभ्य धर्म न च में निवृतिः

अर्थात् मै धर्म को जानता हूँ किन्तु उसमे मेरी प्रवृत्ति नहीं है और मै अधर्म को भी जानता हूँ किन्तु उससे मेरी निवृत्ति नहीं हैं यह तथ्य इस बात का साक्षी है कि मूल्यों का केवल ज्ञान होना ही पर्याप्त नहीं हैं बल्कि मूल्यपरक तथ्यों का जीवन में अभ्यास करना ही मूल्यों की, सच्ची सार्थकता है।

मूल्यपरक शिक्षा

शिक्षा जीवन का शाश्वत मूल्य है। मानवीय चेतना जिन दो प्रकार के मूल्यों की परिधि में पल्लवित होती है उनमें कुछ शाश्वत होते हैं और कुछ परिवर्तनशील शिक्षा को जीवन का शाश्वत मूल्य कहा जाता है क्योंकि कोई भी अज्ञानी अथवा अशिक्षित व्यक्ति अपने जीवन को विकासशील नही बना पाता ज्ञान की अनिवार्यता हर युग में रही है। इसलिए हर युग में मूल्यपरक शिक्षा का महत्व आदिकाल से चला आ रहा है। शिक्षा का अर्थ केवल वस्तुओं या विभिन्न विषयों का ज्ञान मात्र ही नहीं है अपितु ज्ञान एवं शिक्षा की सार्थकता वस्तुओं के ज्ञान के साथ ही उपयोग और अनुपयोग का विश्लेषण करने तथा उनमें अनुपयोगी को त्यागने एवं उपादेय को ग्रहण करने की दृष्टि का विकास भी होना चाहिए। तभी शिक्षा अपने सम्पूर्ण

अर्थ को प्राप्त होती है। जैन दर्शन में ज्ञान एवं विद्या की इस सार्थकता को ज्ञपरिज्ञा और प्रव्याख्यान परिज्ञा कहा गया है। इसे ही ज्ञान और आचरण का समन्वय कहा जाता है इन दोनों का सांमजस्य होने पर ही व्यक्ति वास्तव में ज्ञानी पंडित और शिक्षित कहा जाता है। ज्ञान और आचरण का सामंजस्य ही व्यक्तित्व का समग्र विकास कहलाता है और इसी का दूसरा नाम विवेक है। इसलिए ज्ञान और आचरण में– बोध और विवेक में जो सामंजस्य प्रस्तुत कर सके उसे ही वास्तव में मूल्यपरक शिक्षा कहा गया है।

शिक्षा का उद्देश्य केवल वैयक्तिक या केवल सामजिक नही हो सकता, दोनो ही महत्वपूर्ण है इनके अनुसार शिक्षा को मूल्य – केन्द्रित होना चाहिए प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति को चरित्र निर्माण के प्रति सतर्क रहना चाहिए, शिक्षित व्यक्ति में नम्रता या विनयशीलता होनी चाहिए, सरलता या सादगी का समावेश होना चाहिए । यही कारण है कि गुरू नानक और उनके शिष्यों में मधुर संबध थे वे अनुशासन प्रिय थे और इनकी शिक्षापद्धति में अनुशासन का समावेश था, नानक जी के अनुसार शिक्षा में नाम जप का समावेश होने से अन्तःकरण शुद्ध हो जायेगा और कक्षा, विद्यालय तथा समाज में अनुशासन हीनता की समस्या खड़ी ही नहीं होगी इसी प्रकार मानव जीवन में मूल्यपरक शिक्षा के संबंध में आयुर्वेद में कहा है कि सम्पूर्ण जीवन में शिक्षा का विशेष महत्व है ,क्योंकि आयुर्वेद तो प्रारम्भ से ही संपूर्णतावादी मानव विज्ञान है, जो मानव जीवन के चारों पक्षों की पूर्णता पर बल देता है क्योंकि आयुर्वेद में केवल मनुष्य को पूर्ण इकाई न मानकर संम्पूर्ण ब्रहाण्ड के सिद्धांत का प्रतिपादन है। आयुर्वेद ने शरीर इन्द्रिय सत्व तथा आत्मा के संयोग को ही जीवन माना है जिसे आयु की संज्ञा दी गयी है, और जीवन की सम्पूर्णता हेतु सभी प्रकार की मूल्यपरक शिक्षाओं का निर्देश दिया गया है जिनके अनुपालन से ही मनुष्य का समग्र विकास संभव है।

उपसंहार :

विभिन्न शिक्षा विशारदों, शिक्षा आयोगों के विचारों तथा प्रतिवेदनों के अनुसार इसका महत्व सुस्पष्ट हो जाता है, पर मात्र कागजी स्तर पर होने वाले कार्य इस समस्या का समाधान कर सकें, यह असंभव है। शिक्षक राष्ट्रमंदिर के कुशल शिल्पी हैं। शिक्षार्थी अनगढ़ मिट्टी के समान हैं। विद्यालय इनको मजबूत ईंटों में ढालने वाली टकसाल के समान है। शिक्षा वह विद्या है, जिससे इनको ढाला तथा राष्ट्रमंदिर को गढ़ा जाता है। धर्म और नैतिकता ही वह आग है, जिससे इन कच्ची ईंटों को मजबूती व सौंदर्य प्राप्त हो सकता है अन्यथा इसके अभाव में तो गढ़ाई की सुंदरता के बाद भी कच्चापन रह जाएगा। शिक्षा एवं विद्या का सार्थक समन्वय इसीलिए जरूरी है।इस शिल्पकला के लिए शिक्षार्थी शिक्षक दोनों को ही अपनी भूमिका समझनी होगी, मनःस्थिति को सुयोग्य बनाकर इस निर्माण–कार्य में जुट जाना होगा। इसमें जुट पड़ने से ही राष्ट्र–निर्माण, जीवन निर्माण तथा चरित्र–निर्माण के महान कार्य संभव बन पड़ेंगे। पं0 श्रीराम शर्मा आचार्यके अनुसार ''आम आदमी की आत्म – मूर्घना में ग्रसित है वह चाहे कितना ही पढ़ा लिखा क्यों न हो यदि उसे सही ढंग से सोचना समाज का सुनियोजन करना प्रतिकूलताओं से मोर्चा लेना समाज के अन्य घटकों के साथ रहना नही आता है तो उसका पढ़ा लिखा होना न केवल बेकार है बल्कि उस पर लगाया हुआ धन भी राष्ट्रीय अपव्यय के समान है। ऐसे तथाकथित शिक्षितों के लिए अब संजीवनी विद्या व मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता पड़ेगी जो उन्हें मूर्द्यना से उबार सके, सभ्य परायण बना सकें। राष्ट्र को ज्ञानवान, प्रज्ञावान, शक्तिवान, समुन्नत और सुविकसित बनाने के लिए वर्तमान, शिक्षा पद्धति में परिर्वतन नितान्त आवश्यक है।''

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- गुप्त रामबाबू (1976) भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें, सामाजिक विज्ञान प्रकाशन खलासी लाइन कानपुर–1 पृष्ठ –17
- निरंजनानंद स्वामी (1998) गीता दर्शन, श्री पंचदशनाथ परमहंस प्रकाशन अलखबाड़ा देवधर बिहार पृष्ठ–3
- शर्मा श्रीराम (1999) शिक्षा ही नही विद्या भी वाड–49, प्रकाशन युग निर्माण योजना,गायत्री तपोभूमि मथुरा पृष्ठ–4
- शर्मा श्रीराम (1999) संजीवनी विद्या का विस्तार भी प्रकाशन युग चेतना प्रकाशन शांतिकुंज हरिद्वार पृष्ठ–17

- शर्मा श्रीराम (1998) शिक्षा और विद्या वाड–49, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा पृष्ठ
- शर्मा श्रीराम (1999) शिक्षा ही नही विद्या भी वाड–49, प्रकाशन युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि मथुरा पृष्ठ–4
- शर्मा श्रीराम (1999) संजीवनी विद्या का विस्तार भी प्रकाशन युग चेतना प्रकाशन शांतिकुंज हरिद्वार पृष्ठ–17
- पाण्डेय रामशकल (2000) भारत में मूल्य शिक्षा की परम्परा, सूर्या पब्लिशर्स गवर्नमेंट इंटर कालेज मेरठ पृष्ठ–87
- सिंह रामहर्ष (2001) स्वस्थवृत्त–विज्ञान – प्रकाशन चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान जवाहर नगर बंगल रोड दिल्ली पृष्ठ–14
- मित्तल कुमार राकेश (2006) राष्ट्रीय विकास एवं शिक्षा प्रकाशन कबीर शांति मिशन विकास खण्ड लखनऊ पृष्ठ–114
- त्यागी जी एस डी एवं पाठक डी. पी. (2008) भारतीय शिक्षा की सामाजिक समस्यायें, डॉ रागेय राघव मार्ग विनोद पुस्तक मंदिर आगरा पृष्ठ–8
- पाण्डेय रामशकल एवं मिश्रा करूणा शंकर (2008) प्रकाशन, आदर्श पब्लिशर्स अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली पृष्ठ–1
- पचौली रामशकल एवं मिश्रा करूणा शंकर (2008) मूल्य शिक्षा प्रकाशन अंसारी पुस्तक मंदिर डा0 रागेय राघव मार्ग आगरा–2
- पाठक– आर .पी (2008) भारतीय परम्परा में शैक्षिक चिंतन प्रकाशन कनिष्ठ पब्लिशर्म डिस्टीब्यूटर्स अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली पृष्ठ–8
- भटनागर एवी एवं भटनागर मीनाक्षी व भटनागर अनुराग (2008) शिक्षा मनोविज्ञान प्रकाशन लाल बुक डिपो गवर्नमेंट इंटर कालेज मेरठ पृष्ठ–2
- सेवानी अशोक एवं सिंह अमा (2008) शिक्षा सिद्धांत एवं आधुनिक भारत में शिक्षा डा 0 – रागेय राघव मार्ग विनोद पुस्तक मंदिर आगरा–2 पृष्ठ–19
- शर्मा आर .ए (2008) मानव मूल्य एवं शिक्षा प्रकाशन आर. लाल बुक डिपो गवर्नमेंट इंटर कालेज मेरठ पृष्ठ–82
- शर्मा श्री राम (2010) दिसम्बर जीवन का स्वरूप और उपयोग सिखा सकने वाली शिक्षा चाहिए प्रकाशन–अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा पृष्ठ–5

Education is golden key to unlock the golden door of freedom. I can teach anybody how to get what they want out of life. The problem is that I can't find anybody who can tell me what they want.

Mark Twain